"स्त्री के सामाजिक और विधिक अधिकारों पर मुस्लिम विधि का प्रभाव"

प्रो0 सै0 हुसैन कमालुद्दीन अकबर जावेद जायसी, इलाहाबाद)

आधुनिक युग कम से कम विधि के क्षेत्र में, सुधार का युग समझा जाता है। आज हम फ़ैशन के तौर पर पुरातन विधि प्रणालियों में सुधार की बात करते हैं चाहे यह सुधार अच्छा हो या बुरा। और यह मनुष्य की प्रकृति है कि उसे हर नई बात अच्छी लगती है। इसी, प्रकाश में मुस्लिम विधि का अध्ययन हमारे आधुनिक विधि शास्त्री करते हैं। न केवल इसी सीमा तक वरन उनके विचारों में धर्म और उन्नति परस्पर विरोधी हैं और इसलिए वे धर्म और धार्मिक धारणाओं के विरूद्ध सोचते भी हैं और लिखते भी रहते हैं। लेकिन इस प्रकार की विचारधारा बिना किसी आरक्षण के हर प्रणाली के लिए लागू कर देना न्यायोचित नहीं है। इसलिए यह आवश्यक है कि जिस प्रणाली पर अवनति का आरोप लगाया जाए पहले उसके नियमों का, खुले मस्तिष्क से विश्लेषण कर लिया जाए। इस्लाम के नियमों अथवा मुस्लिम विधि पर भी इसी दृष्टिकोण से विचार होना चाहिए।

"बनार्ड शा" ने कहा है:–

"मैं मुहम्मद स0 के धर्म के लिए सदैव अधिकतम आदर प्रदर्शित करता हूं, क्योंकि इसमें जीवित रहने की अत्यधिक विशेषता है। मेरे विचार में इस्लाम वह अकेला धर्म है जो कि समझौते की भावना और नियनत्रण की क्षमता रखते हुए विभिन्न परिस्थितियों ओर बदलते जीवन प्रसंगों के साथ तथा शताब्दियों की विभिन्नताओं से टक्कर ले सकता है।"[1]

स्त्रियों के प्रति इस्लाम की योजना के बारे में भी यह धारणा विद्यमान है। अधिकतर मूसलमानों की त्रुटियों आदतों को इस्लाम का क़ानून समझ लिया जाता है। आज के इस युग में तस्करी एक अपराध है और सभी देश तस्करी के विरूद्ध क़ानून बनाए हुए हैं। अब यदि हर देश में तस्करी की भरमार है तो क्या तस्करी के लिए क़ानून ज़िम्मेदार है अथवा वे अपराधी, जो इसका उत्तर मुसलमानों का अध्ययन करने वाले आधुनिक लोग मुस्लिम विधि को बर्बतापूर्ण और निरंकुश विधि कहते हैं, क्योंकि पति के हाथों में तलाक़ की शक्ति, पुरूष के लिए बहु विवाह मह्र का भुगतान और पति का पत्नि पर नियन्त्रण रखना इत्यादि आधुनिक विचारधारा के प्रतिकूल है।

पश्चिमी परम्परागत शैक्षिक केन्द्रों में इस बात का फ़ैशन है कि जब वे किसी सामाजिक, राज–नैतिक, ऐतिहासिक और अन्य बौद्धिक नियमों की चर्चा करते हैं तो उनमें "ग्रीक" और "रोमन" आधार अवश्य ढूंढते हैं। यह इसलिए कि पश्चिमी मस्तिष्क में हर वस्तु पश्चिमी सभयता और इतिहास से उदित होती है।[2] मुस्लिम विधि का अध्ययन भी वे इसी प्रकार से करना चाहते हैं। हम उनकी इस ग़लत विचार धारा के भागीदार नहीं है इसलिए हम सभी महत्वपूर्ण धर्मों और सभ्यताओं को सामने रखते हुए अपेक्षित अध्ययन करेंगे।

स्त्री का विधिक स्तर रोमन लॉ में

स्त्री की प्रतिमा रोमन लॉ में, उसका पुरूष पर पूर्ण रूप से निर्भर होना दर्शित करता है कि जब वह अविवाहित हो तो अपने पिता के पूर्ण नियन्त्रण में और उसके मरने के पश्चात सपिह पर चाहे वे रक्त सम्बन्धी हो या दत्तक,[3] एक विवाहित स्त्री के रूप में अपने पति पर क्योकि वह एक सम्पत्ति समझी जाती थी जो विवाह के द्वारा पति को अन्तरित की जाती थी वह एक ख़रीदी हुई कनीज़[4] के समान थी। रोमन ला में पति के पास पूर्ण शक्ति थी कि वह अपनी पत्नी को मार डाले यदि पत्नी किसी को विष से मारने की दोषी हो या किसी की शराब से सेवा करे या किसी बच्चे को बिना पति की अनुमति के दत्तक ग्रहण करे।[5] एक स्त्री न तो गवाही दे सकती थी न कोई

लोक अधिकारी बन सकती थी, न वह दत्तक ग्रहण कर सकती थी और न ही उसको गोद लिया जा सकता था, वह ज़मानत भी नहीं ले सकती थी। आम स्त्री की तो बात हीक्या है महान थ्योडोसियस की पुत्री, गोथ्स की रानी, को ज़ंजीरों में जकड़ कर घसीटा गया और इन्तेक़ाम का मज़ा चखाया गया और उसके पश्चात शांति सन्धि में गेंहू से उस बेचारी का तबादला किया गया।

बहु विवाह जो पश्चिमी आलोचकों के द्वारा सदैव बुरा कहा जाता है, रोमन समाज में मौजूद था, मार्क एन्टोनी के दो पत्नियां थीं और बहु विवाह समय के साथ फलता फूलता रहा और लोकप्रिय रहा। यह कहना ग़लत नहीं है कि सभी प्राचीन समाज और धर्म बहुपत्नीत्व को मान्यता प्रदान करते हैं।

स्त्री का सामाजिक और विधिक स्तर एथेन्स में

प्राचीन देशों में एथेंस जो कि सभ्यता और संस्कृति का केन्द्र समझा जाता है स्त्री के अधिकारों और सामाजिक स्तर के लिए अच्छा नहीं था। पत्नी केवल एक वस्तु थी और बेचने योग्य थी, अन्तरित भी की जा सकती थी तथा मृत्यु के पश्चात उत्तराधिकारियों के द्वारा विरासत के रूप में हासिल की जाती थी वह एक ऐसी बुराई थी जो घर के चलाने, ख़ानदान की स्थापना और सन्तानोत्पत्ति के लिए आवश्यक थी।[(7)] एक पुरूष जितनी भी शादियां चाहे, कर सकता था।

स्त्री का सामाजिक और विधिक स्तर हिन्दू समाज में

वैदिक काल में स्त्रियों को पुरूषों के समक्ष पूर्ण बराबरी का दर्जा धर्म के क्षेत्र में प्राप्त था लेकिन बहुत से सामाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक कारणों से जो कि 300 ईसा पूर्व के पश्चात उठ रहे थे उसके स्तर में अवनति होने लगी।[(8)] "मनु" के द्वारा स्त्री के लिए शाश्वत संरक्षण का सिद्धान्त दिया गया। उनके अनुसार स्त्री पूर्ण रूप से पुरूष के नियन्त्रण में रहती है। अपने बचपन में वह अपने पिता पर, जवानी में पति पर और बुढ़ापे में बेटे पर निर्भर करती है। यह कथन है कि पत्नी को अपने पति का भगवान के रूप में आदर करना चाहिए और निष्ठा पूर्वक सेवा करना चाहिए चाहे वह बिना किसी अच्छाई के हो। और चाहे दुष्चरित्र वाला ही क्यों न हो, सभी स्त्रियों के लिए लागू होता था। सन् 700 ई. तक सती प्रथा, लड़कियों को मार डालने की प्रथा, विधवाओं के साथ बुरा ब्यवहार दायाधिकार न पाना इत्यादि उसके सामाजिक स्तर में और भी कमी की और वह पूर्ण रूप से पुरूषों के नियन्त्रण में अपने व्यक्तित्व को खोकर आ गयी।[(10)] यह हास निरन्तर होता रहा यहां तक कि वह ऐसी कठपुतली बन गयी जिसकी बागडोर किसी दूसरे के हाथ में हो[(11)] भारत में सन् 1955 ई के हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के पूर्व बहु पत्नीत्व की कोई सीमा न थी। एक पति जितनी पत्नियां चाहे रख सकता था। इसी प्रकार हिन्दू दत्तक ग्रहण तथा भरण–पोषण अधिनियम, 1956 के पूर्व न तो स्त्री दत्तक ग्रहण कर सकती थी और न ही स्त्री को गोद लिया जा सकता था। हिन्दू समाज का यह रिवाज भी बहुत रोचक है कि पत्नी का पिता अपने दामाद के घर खाना तो कैसा पानी नहीं पीता था अब भी बहुत से ग्रामवासी इस प्रथा का पालन करते हैं। सामाजिक विधि, सैद्धान्तिक और नैतिक दृष्टिकोण से, आधुनिक विध ाायन के पूर्व, स्त्री हिन्दू समाज में अस्तित्व हीन थी।[(12)]

यूरोप और एशिया वालों का सामान्य दृष्टिकोण

चीन में ऐसी कहावत है कि दस औरतों में केवल एक ही आत्मा होती है। इटली वाले कहते हें "जैसे एक घोड़े को चाहे अच्छा हो या बुरा एड़ लगाई जाती है उसी प्रकार औरत चाहे अच्छी हो या बुरी पिटाई चाहती है" प्राचीन काल में जापान में औरतें न तो पूजा कर सकती थीं और न धार्मिक क्रियाओं में भाग ले सकती थीं", जब कि चीन के मन्दिरों में उनका प्रवेश करना वर्जित था। प्राचीन भारत में भगवान की मूर्ति को वह नहीं छू सकती थीं।[(13)]

इस्लाम के फैलने के पूर्व अरब की दशा स्त्रियों के लिए सब से ख़राब थी। अरब लड़कियों को जीवित दफ़्ना देते थे। क़ुरैश का क़बीला तो इस प्रथा को और ज़्यादा अमानवीय बना देता था। जब किसी क़ुरैशी के यहां लड़की होती तो वह उसको एक ऊनी कपड़े में लपेट देता जो कि रेकिस्तानों में ऊटों और भेड़ों के लिए प्रयोग होता था लेकिन यदि उसने मार डालना तय कर लिया है तो वह उस लड़की को छोड़ देता था यहां तक कि वह छः साल के लगभग हो जाती थी तब लड़की का पिता उसकी माता से कहता कि "इसको खुश्बू लगाकर तैयार कर दो ताकि मैं इसको इसकी माताओं के पास पंहुचा दूं।" जब वह लड़की तैयार कर दी जाती तो उसे लेकर के सहरा (जंगल) में जाता और इस काम के लिए पहले से एक गड्ढा तैयार होता था। बच्ची से कहा जाता कि वह

गडढे में झांके जब वह मासूम बच्ची गड्ढे में झांकने लगती तो पीछे से बाप धक्का देकर गिरा देता और मिट्टी से गड्ढा पाट के इस क़िस्से को हमेशा के लिए दफ़्ना दिया जाता था।[14]

कुर्आन ने इस कुप्रथा को यूं बयान किया है

''और जब जीवित गड़ी हुई लड़की से पूछा जाएगा कि किस गुनाह पर मार डाली गयी।''[15]

सत्री की हैसियत विभिन्न धार्मिक प्रणालियों में

संसार में धर्मों की कोई सीमा नहीं है अतः हम हर धर्म के दृष्टिकोण से अपना विश्लेषण करने में असमर्थ होंगे। हम केवल संसार के उन चार धर्मों को अपना केन्द्र बिन्दु बनायेंगे जो लगभग 90% लोगों का धर्म है अर्थात बौध, यहूदी, ईसाई धर्म और इस्लाम। हिन्दू समाज के बारे में हम पहले ही निवेदन कर चुके हैं और हिन्दू समाज एक धर्म से अधिक एक संस्किृति है।

बौध धर्म में स्त्री का स्थान

सैद्धान्तिक रूप में सबसे अधिक मिसाली (आदर्श) धर्म बौध है फिर भी इसने औरत को उसका उचित स्थान नहीं दिया। ''निर्वाण'' जोकि इस धर्म का मूल उद्देश्य है न तो स्त्री को प्राप्त हो सकता है और न ही स्त्री के संग रहने वाले को प्राप्त होगा। बौध धर्म ने बड़ी ही बहादुरी के साथ हिन्दू धर्म के जातीय समाज के विरूद्ध लड़ाई लड़ी ताकि समस्त मनुष्यों को बराबरी का दर्जा मिले फिर भी इस क्रांतिकारी विचार धारा का कोई लाभ स्त्री को प्राप्त न हो सका। जैसे एक शूद्रघराने में पैदा होना एक हिन्दू के लिए अभिशाप था वैसे ही एक स्त्री के रूप में पैदा होना बौध स्त्री के लिए भी अभिशाप था। महात्मा बुद्ध ने ''निर्वाण'' के लिए ब्रहम्चर्य की शिक्षा दी मगर वह प्रकृति के नियमों को नहीं बदल सके इस लिए उनके समुदाय के बहुसंख्यक लोग उस नियम का पालन करने में असमर्थ रहे।

यहूदी धर्म में स्त्री का स्थान

आज भी यहूदी अपनी प्रार्थना में रोज़ यह कहता है कि ऐ ईश्वर तू धन्य है जो ब्रहमाण्ड का बनाने वाला है कि तू ने मुझे स्त्री नहीं बनाया।[16] यहूदी विचारधारा के अनुसार हमारी सारी परेशानियों की ज़िम्मेदारी हमारी माता हव्वा पर है जो आदम को जन्नत से निकलवाने का कारण बनी हैं। औरत धार्मिक दृष्टि से अपवित्र थी और राजनैतिक दृष्टिकोण से अस्तित्वहीन थी। स्त्री को राय देने का काई अधिकार न था चाहे राजनैतिक मामला हो अथवा सामाजिक और धार्मिक। यहूदी धर्म में लड़कियों को मीरास पाने का अधिकार निश्चय ही प्रगतिशील क़दम है मगर यह बात भी याद रखने योग्य है कि वह तभी हिस्सा पा सकती थी जब मृतक के कोई बेटा न हो।[17] बहुपत्नीत्व को मान्यता प्राप्त थी। यदि पश्चिमी यहूदी एक विवाह तक सीमित थे तो इसका कारण हज़रत मूसा की शरीअत न थी। स्वयं हज़रत मूसा के एक से अधिक पत्नियां थीं। हज़रत इब्राहीम के दो पत्नियां और हज़रत दाऊद की बहुत सी पत्नियां थीं।

ईसाई धर्म में स्त्री की हैसियत

रोमन कैथोलिक कुंवारी मरियम को सन्तों और भगवानों की श्रंखला में उच्च स्थान देते हैं। लेकिन समस्त ईसाई चाहे वे प्रोस्टेस्टेंट हों या कैथोलिक वे औरत की अपराधी प्रकृति पर अपने धार्मिक आधार बनाये हुए हैं। ईसाइयों ने आदम के निकाले जाने में हव्वा का अपराध साबित करने वाली यहूदियों की न केवल कहानी मान ली वरन उनसे बढ़कर कहा कि यदि औरत न होती तो मासूम आदमी ने गुनाह जाना ही न होता और फिर किसी नजात दिलाने वाले की आवश्यकता न होती। इस पर कोई आश्चर्य नहीं है कि पवित्र इस्राइयों में जैसे सन्त बर्नाड, सन्त अन्थोनी, सन्त बोनावेचर, सन्त जेरोम, सन्त ग्रीगोरी और सन्त साइप्रियन सभी ने औरत को बुरा कहा है। औरत की संज्ञा ''शैतान का हथियार'' ''शैतान की भुजाओं का आधार'' ''शैतान का दरवाज़ा'' ''एक काटने के लिए तैयार बिच्छू'' इत्यादि से दी है।[18]

सन्त पाल, जिन्हें आधुनिक ईसाइयत का पिता समझा जाता है के अनुसार स्त्री पुरूष के लिए बनायी गयी है पुरूष, स्त्री के लिए नहीं बनाया गया अतः औरत पुरूष की आशाओं का पालन करने के लिए बाध्य है। जहां तक बहुपत्नीत्व का प्रश्न है ईसाई धर्म विवाह को अच्छा नहीं समझता। स्त्री एक अपवित्र प्राणी है और एक सच्चे ईसाई को इस अपवित्रता से दूर रहना चाहिए। यह और बात है कि उनका सिद्धान्तवाद प्रकृति के विरूद्ध था इसलिए विवश होकर विवाह के पक्ष में छूट देना पड़ी। महान ग्रोगोरी, सच्चे ईसाइयों और धार्मिक गुरूओं के विवाह के ख़िलाफ़ था उसका परिणाम यह हुआ कि जब उसने

चर्च में स्थित तालाब को साफ़ करवाया तो उसमें 6 हज़ार बच्चों के ढांचे मिले।[19] ईसाई धार्मिक नेता, इन सब प्रतिबन्धों के बावजूद बिशप से लाइसेंस प्राप्त करके बहुत सी पत्नियां रखते थे।[20] सै0 अमीर अली इसी लिए कहते है।:–

"सबसे बड़ी भूल ईसाई लेखकों की यह प्रकल्पना है कि मुहम्मद स0 ने या तो बहुपत्नीत्व को बैद्यान्ता प्रदान की या ग्रहण किया। इस धारणा से ज़्यादा ग़लत धारणा नहीं हो सकती"।[21]

वास्तव में बहुविवाह जस्टीनियन के समय तक प्रचलित था। जिसने तेरह शताब्दियों के तजुर्बे का लाभ उठाया। लेकिन यह बात याद रखने योग्य है कि जस्टीनियन के क़ानून का आधार ईसाई शिक्षा नहीं है, क्योंकि इसका सबसे बड़ा सलाहकार एक अनीश्वरवादी था।[22] और उसके बाद भी जस्टीनियन के बनाए क़ानून बहुविवाह की पद्धति को सीमित नहीं कर सके जब तक कि लोकमत उसके विरूद्ध नहीं हो गया। यह एक विवाह वास्तव में एक समझौता है ब्रहम्चर्य और बहुविवाह में क्या यह बात कम आश्चर्यजनक है कि बहुविवाह इंग्लैण्ड में घोर अपराध (FELONY) है जब कि जारता (ADULTERY) अपराध नहीं है और उससे भी बढकर पार्लियामेन्ट के द्वारा पारित अधिनियम से समलिंगत (HOMO SEXUALITY) वैध है। इसका अर्थ यह है कि यदि मनुष्य अपनी पत्नी का प्रमिद्वन्द्वी किसी स्त्री को बनाता है तो यह अपराध है मगर जब वह पुरूषों के बीच से पत्नी का प्रतिद्वन्द्वी लाए तो यह एक आदरणीय और इन्सानी कृत्य है। और ऐसा उचित कार्य है जो बीसवीं शताब्दी की आवश्यकताओं के लिए लाभदायक सिद्ध होगा।[23]

ईसाई धर्म में स्त्री का स्तर बौध, यहूदी और दूसरे धर्मों की तुलना में बदतरीन है क्योंकि स्त्री की आबरू का मोती ईसाई दुनिया के बाज़ार में बिकने योग्य वस्तु है। पूरे यूरोप और अमेरिका में यह कारोबारी प्रव्त्ति बैठ गयी है कि वे दुनिया के पृष्ठ को खून से रंगने में बिल्कुल हिचकिचाते नहीं हैं। उसी प्रकार स्त्री की आबरू का क़ीमती मोती बाज़ार में सजाने से भी हिचकिचाते नहीं हैं। शर्त यह है कि उन्हें लाभ होना चाहिए। होटलों में खूबसूरत लड़कियों, दुकानों पर सेल्स गर्ल्स, इश्तिहारों में औरत को लगभग नंगा दिखाया जाना यह सब कारोबारी प्रवृत्ति का पता देते हैं अब चाहे उसका नतीजा यह क्यों न निकले कि समाज और नैतिकता का जनाज़ा निकल जाए। पुरूष को स्त्री के शील भंग की कोई सज़ा नहीं दी जाती है वह केवल स्वामी को हर्जाना अदा कर दे। अनैतिकता अपने आपमें कोई अपराध नहीं है बस विधि के अनुसार इसके लिए एक क़ीमत निर्धारित कर दी गयी है।[24]

स्त्री का स्तर कुर्आन में

विभिन्न आयतों मे कुर्आन ने स्त्री और पुरूषों का उल्लेख एक ही प्रकार से किया है जैसे–

1. "हे लोगों! अपने रब का डर रखो जिसने तुम्हें एक जीव से पैदा किया और उसी से उसका जोड़ा पैदा किया और उन दोनों से बहुत से पुरूषों और स्त्रियों को फैला दिया।"[25]

2. "हे लोगो! हमने तुम्हें पैदा किया एक पुरूष और स्त्री से और तुम्हारी बहुत सी जातियां और वंश बनाए ताकि तुम एक दूसरे को पहचान सको। अल्लाह के यहां तो तुम में सबसे ज़्यादा इज़्ज़त वाला वह है जो तुम में सबसे अधिक डर रखता हो।"[26]

3. "......मैं तुममें से किसी कर्म करने वाले का कर्म अकारथ नहीं करूंगा पुरूष हो या स्त्री तुम सब एक दूसरे से हो।"[27]

4. ".......पुरूषों ने जो कमाया है उसके अनुसार उनका हिस्सा है और स्त्रियों ने जो कुछ कमाया है उसके अनुसार उनका हिस्सा है।"[28]

5. "और चोरी करने वाले और चोरी करने वाली के हाथ काट दो उसके बदले के रूप में जो उन्होंने कमाया है और एक शिक्षाप्रद दण्ड के रूप में अल्लाह की ओर से।"[29]

6. "जिना (व्यभिचार) करने वाली स्त्री और ज़िना करने वाला पुरूष दोनों में से प्रत्येक को सौ कोड़े मारो और अल्लाह के दीन के मामले में तुम्हें उन पर तरस न आए यदि तुम अल्लाह और अन्तिम दिन पर ईमान रखते हो।"[30]

7. "मुस्लिम पुरूष और मुस्लिम स्त्रियां, ईमान वाले पुरूष और ईमान वाली स्त्रियां, आज्ञाकारी पुरूष और आज्ञाकारी स्त्रियां, सत्यवादी पुरूष और सत्यवादिनी स्त्रियां, सब्र करने वाले पुरूष और सब्र करने वाली स्त्रियां, विनम्रता प्रकट करने वाले पुरूष और विनम्रता प्रकट करने वाली स्त्रियां, सदक़ा देने

वाले पुरूष और सदक़ा देने वाली स्त्रियां, रोज़ा रखने वाले पुरूष और रोज़ा रखने वाली स्त्रियां अपनी शर्मगाहों (गुप्त–अंगों) को छिपाने वाले पुरूष और छिपाने वाली स्त्रियां और अल्लाह का अधिक स्मरण करने वाले पुरूष और स्मरण करने वाली स्त्रियां निश्चय ही इनके लिए अल्लाह ने क्षमा और बड़ा बदला तैयार कर रखा है।''[31]

कुर्आन से अधिक आयतों का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यही आयतें इस्लाम का पक्ष स्त्री के प्रति बतलाने के लिए काफ़ी हैं। जहां तक आधार भूत मानवीय अधिकारों का मामला है इस्लाम पुरूष और स्त्री दोनों को बराबर समझता है। मानव व्यक्तित्व स्त्री और पुरुष दोनों के लिए है और अधिकारों के मामले में दोनों बराबर हैं।[32] दोनों से इस्लाम के नियमों का पालन करने का आग्रह किया है, दोनों को आज्ञाकारी रहना चाहिए, दोनों को नैतिक जीवन व्यतीत करना चाहिए, दोनों को अपराध करने का दण्ड मिलेगा।

बीसवीं श्ताब्दी में स्त्री के विधिक अधिकारों का प्रश्न पुरूष के विधिका अधिकारों के मुक़ाबले में उठा है और पहली बार संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा घोषित ''यूनिवर्सल डेक्लिरेशन आफ हयूमन राइटस (विश्व मानवाधिकार की घोषणा)[33] में पुरूषों से स्त्री के अधिकारों के वकीलों ने स्त्री की स्वतन्त्रता का अर्थ उसके अधिकारों का पुरूषों के समान होना अपने आन्दोलन का उद्देश्य माना। स्त्री की स्वतन्त्रता और बराबरी का नियम इन्सानियत कभी भी नकार नहीं सकती लेकिन एक प्रश्न यह उठता है:

क्या अधिकारों की बराबरी का अर्थ अधिकारों का अनुरूप होना है?

अल्लामा तबातबाई ने बड़ी अच्छी बात कही है, ''..........मानव समाज की सदस्यता का सिद्धान्त एक बात है और सदस्यता की प्रकृति और प्रकार एक दूसरी वस्तु है। दोनों को एक वस्तु नहीं समझना चाहिए।''[34]

स्त्री के प्रति बराबरी और स्वतन्त्रता के आन्दोलन में जान बूझकर या अनजाने में समानता का अर्थ अनूरूपता लिया गया हैं या एक रूपता[35] लेकिन याद रखना चाहिए वे दो प्रकार के इन्सान हैं उनकी दो प्रकार की मनोवैज्ञानिक भावनायें हैं और दो ही प्रकार के शारीरिक भेद हैं।

स्त्री का प्राकृतिक ढांचा

पुरूष की अपेक्षा, स्त्री दुर्बल होती है चाहे उसके शारीरिक ढांचे को लें, वज़न, लम्बाई, अथवा उसके मस्तिष्क की विवेचना करें। इससे हमें यह मालूम हो जाएगा कि वह कड़े और सख्त काम के लिए नहीं बनाई गयी है। फ़िजियालॉजी के सहारे से हम कह सकते हैं कि एक औसत पुरूष का मस्तिष्क एक औसत स्त्री के मस्तिष्क से 100 ग्राम अधिक, वज़न 4000 ग्राम अधिक, हृदय 10 ग्राम अधिक, फेफड़े 300 ग्राम आधिक है। उसके साथ साथ पुरूष की हड्डियां स्त्री की हड्डियों से अधिक मज़बूत होती है स्त्री की मांस पेशियां कमज़ोर मगर अधिक पेचीदा होती हैं।[36] शारीरिक बनावट में अन्तर दोनों की मान्सिक स्थिति में भी अन्तर पैदा करता है। स्त्री के पास मस्तिष्क का वह भाग अधिक है जो भावनाओं से सम्बन्धित है उसके जवाब में पुरुष के पास मस्तिष्क का वह भाग अधिक है जो सोचने और निर्णय करने से सम्बन्धित है। फिर स्त्री के शरीर में सन्तानोत्पत्ति और उसके पालन पोषण की जो व्यवस्था है वह भी मिज़ाज में नर्मी चाहती है, सहानुभूति और त्याग। अतः वह जल्द उत्तेजित भी हो उठती है। पुरूष को जीविका अर्जन के लिए संघर्ष करना है इस लिए सोचने, निर्णय करने की अधिक आवश्यकता है। यह काम भावनाओं की उत्तेजना से नहीं हो सकता। समानता का अर्थ है समान लोगों में बराबरी लेकिन जहां इतने भेद केवल शारीरिक स्तर पर हों वही एक से अधिकार दे देना इस्लाम के न्याय के सिद्धान्त के विरूद्ध है। दोनों प्रकार के प्राणियों का अपना अलग स्थान है न पुरूषों को स्त्रियों के अधिकार मिल सकते हैं और न स्त्रियों को पुरूषों के। कुर्आन की सांकेतिक भाषा में।

''न सूर्य के वश में है कि वह चन्द्रमा को जा ले और रात दिन से आगे बढ़ने वाली है। और सब एक कक्ष में तैर रहे हैं।[37] यह बात हम कभी न भूलें कि सम्पूर्ण मुस्लिम विधि एक दूसरे से जुड़ी हुई है अब यदि कोई एक नियम अलग कर लिया जाता है और इसको त्रुटिपूर्ण बतलाया जाता है तो इस प्रकार का अध्ययन वास्तव में न्याय नहीं है। हर नियम प्रणाली का एक अविछिन्न अंग है जिस तरह मशीन में पुर्जे लगे होते हैं। क्या एक पुर्जे को निकाल कर उसका

अध्ययन करें तो शायद उसकी क़ीमत लोहे के भाव समझी जाएगी। हां जब वह पुर्जा मशीन का एक भाग बन जाता है तो उसकी उपयोगिता का फ़ैसला मशीन की कार्यकुशलता से किया जाता है। फिर हम एक–'एक करके उन एतराज को देखेंगे जो मुस्लिम विधि के ऊपर पश्चिमी दृष्टिकोण रखने वाले करते हैं।

उत्तराधिकार में स्त्री का हिस्सा और पुरूष का हिस्सा समान न होना

पुत्र, पुत्री का दो गुना, भाई, बहन का दो गुना, पति पत्नी का दूना हिस्सा पाने के अधिकारी हैं केवल विशिष्ट परिस्थितियों में पिता और माता का हिस्सा बराबर होता है। यह असमानता पुरूष और स्त्री के लिंगिक भेद के कारण नहीं है। इसका कारण वह आर्थिक अवसर है जो एक स्त्री इस्लाम के सामाजिक ढांचे में पाती है।[38] एक बार इब्ने अबिल औजा, जो कि दूसरी शताब्दी हिजरी का नास्तिक था, ने पूछा।

"क्यों एक ग़रीब स्त्री जो कि पुरूष की अपेक्षा दुर्बल है एक हिस्सा पाती है और पुरूष बलवान होने के बावजूद दो हिस्से पाता है? यह न्याय के विरूद्ध है।"

इमाम जाफ़र सादिक़ अ0 ने कहा कि स्त्री को जिहाद से मुक्त किया गया है और महर और भरणपोषण (नफ़क़ा) पुरूष के ज़िम्मे स्त्री के लाभ के लिए डाला गया है। साथ ही साथ संदेहात्मक मामलों में खूंबहा (दियत) में स्त्री को हिस्सा देने से मुक्त किया गया है।[39]

अब एक न्याय करने वाला स्वयं निर्णय कर सकता है कि जिसके ऊपर ज़िम्मेदारी कम डाली गयी है। उसका हिस्सा कम है तो अन्याय कहां से होता है।

मुस्लिम विधि में तलाक़

जब पश्चिमी लेखक पति और पत्नी के बारे में सोचते या लिखते हैं तो ऐसा मालूम होता है जैसे ये दोनों सदैव एक दूसरे से संघर्ष करते रहते हैं और पुरूष बलवान होने के कारण स्त्री का शोषण करता है। इस्लाम में पति और पत्नी का सम्बन्ध प्रेम और दया को केन्द्र बिन्दु बनाता है।

क़ुर्आन के अनुसारः

"वे तुम्हारा लिबास है और तुम उनके लिए लिबास हो।[40] यह याद रखने की बात है कि लिबास वह वस्तु है जो शरीर को स्पर्श करता है और शरीर को बाहरी पर्यावरण सम्बन्धी कुप्रभावों से बचाता है। लिबास की उपमा पुरूष या स्त्री के लिए एक दूसरे के प्रति इस्लाम की विवाह की धारणा को स्पष्ट करती है।"[41]

विवाह के स्तम्भ

इस्लाम में विवाह के स्तम्भ है "मवद्‌दत और रहमत" तथा "एहसान"। क़ुर्आन में यह कहा जा रहा है "और उसकी निशानियों में से यह है कि उसने तुम्हारे लिए एवम् तुम्हीं में से जोड़े पैदा किए ताकि तुम उनके पास आराम और चैन पाओ और तुम्हारे बीच प्रेम और दयालुता रख दी।"[42]

दूसरे स्थान पर विवाह को "एहसान" कहा गया। अरबी में "एहसान" का अर्थ है क़िलाबन्दी करना या क़िला बनाना। एक पुरूष जो विवाह करता है वह क़ुर्आनी भाषा में एक क़िला बनाता है और वह औरत जिससे विवाह हुआ उस क़िले के संरक्षण में आ जाती है। इसीलिए पति को "मुहस्सिन" और पत्नी को "मुहस्सिना" कहा गया है। इस प्रकार वे बुराइयों और अनैतिक कार्यों से बच जाते हैं अब इन स्तम्भों में से किसी एक के तबाह हो जाने पर विवाह का वास्तविक उद्‌देश्य समाप्त हो जाएगा। यदि पति और पत्नी में प्रेम और दया की भावना नहीं रह जाती अथवा अनैतिकता का प्रदर्शन होता है तो विवाह का उद्‌देश्य पूरा नहीं हो रहा है। इन्हीं स्थानों पर तलाक़ खुला मुबारात इत्यादि की अनुमति दी गयी है। जब इन स्तम्भों का अभाव हो जाए तो विवाह उस शरीर के भांति है जो मुर्दा हो चुका है जिसमें रूह नहीं बची है। मुस्लिम विधि इस मुर्दा शरीर की ममी बनाने का क़ायल नहीं हैं कि उससे ये झूठा आभास हो कि शरीर में अभी जान है।"[43] लेकिन............

तलाक़ देने की चाबी क्यों पति ही के क़ब्ज़े में रहती है?

यह प्रश्न विधि से अधिक मनोविज्ञान और समाज शास्त्र से सम्बन्धित है। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि स्त्री को पुरूष की सहनुभूति, दयालुता की आवश्यकता है जिसके बिना विवाह उसके लिए एक न उठने वाला बोझ है उसके विपरीत पुरूष स्त्री के शरीर को चाहता है और स्त्री की सहानुभूति और दयालुता के बिना भी काम चला सकता है पति की उदासीनता और तटस्थता विवाह की पूरी मौत है जब कि पत्नी की उदासीनता विवाह की आधी मौत है और ऐसी स्थिति में रोगी के ठीक हो जाने की भी उम्मीद रहती है। तलाक़ की शक्ति पुरूष के हाथों में, उसकी विशिष्ट भूमिका जो

वैवाहिक जीवन में है, के कारण होती है न कि यह पुरूष का स्त्री पर स्वामित्व है।[44] वैसे तो तलाक़ देने का अधिकार पुरूष के हाथों मे रहता है लेकिन जब वह न तो अपने कर्तव्यों का पालन करता है, और न ही तलाक़ देता है तो अदालत में हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ी है।

हनफ़ी स्कूल का तलाक़ के मामले में अत्यधिक स्वतन्त्रता देना मुस्लिम विधि की आलोचना का कारण बना है। तलाकुल बिदत जिसमें तीन तलाक़ों की घोषणा एक ही ''तुहर'' (पवित्रता की अवधि) में की जा सकती है दूसरे ख़लीफ़ा के दौर में आरम्भ हुई। उस समय की परिस्थितियों का विश्लेषण करना हमारा काम नहीं है फिर भी ऐसी तलाक़ जिसका नाम ही उसके इस्लाम विरोधी होने को दर्शित करता है इजतिहाद के द्वारा संशोधित की जा सकती है। इस्लाम तलाक़ को पसन्द नहीं करता है बल्कि हर उस विधि को चाहता है जिससे तलाक़ की सम्भावना कम से कम हो जाए। यदिा पति पत्नी के साथ शातिपूर्वक नहीं रहना चाहता वरन् उसकी ज़िन्दगी को कष्टप्रद बनाता है और इसलिए कि वह किसी दूसरे से विवाह न करे तो अब कुर्आन की निगाह में तलाक़ बेहतर है।

''तलाक़ दो बार है, उसके बाद या तो सम्मान पूर्वक रोक लिया जाए या दया के साथ स्वतन्त्र कर दिया जाए।''[46]

और जब तुम अपनी औरतों को तलाक़ दो और वे अपनी मुद्दत पूरी कर लें, तो या तो उनको सम्मान पूर्वक रोक लो या सम्मान पूर्वक स्वतन्त्र कर दो, और उनको बलपूर्वक, तंग करने के लिए, न रोको, जो ऐसा करेगा उसने अपना नुक़सान किया।[47]

इसी आयत के स्पष्टीकरण में शैख़ तूसी ने विचार व्यक्त किया है कि नपुंसक पति की पत्नी स्वयं विवाह को विच्छेदित कर सकती है क्योकि नपुंसक पति अपनी पत्नी को सम्मान पूर्वक रोकने में असमर्थ है इस लिए उचित यही है कि वह उसे स्वतन्त्र कर दे।''[48] हां इस्लाम पश्चिमी अन्दाज़ की तलाक़ नहीं चाहता है कि पत्नी इस लिए तलाक़ चाहती है कि पति उसके कुत्ते को प्यार नहीं करता अथवा उसके प्रिय अभिनेता की फिल्म नहीं देखता इत्यादि।

तलाक़ को कम करने के लिए पंचों की नियुक्ति

''और यदि तुमको दोनों के बीच (संविदा) भंग होने का ख़तररा है। तो एक पंच लाओ इसके आदमियों में से और एक पंच उसके आदमियों में से, यदि वे सम्बन्धों को ठीक करने की इच्छा रखते हैं तो अल्लाह उनके मतभेदों को दूर करेगा, निश्चित अल्लाह सब जानता है और सबसे वाक़िफ़ है।''[49]

शहीदे सानी ने अपनी किताब ''अल मसालिक'' में इस आयत को आज्ञात्मक मानते हुए कहा है कि जब तक पंच नियुक्त न हो जाएं और पंच उनके बीच सुलह करवा सकने में असफल न हो जाए पति को तलाक़ देने का अधिकार नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि रिश्तेदारों की मौजूदगी से तलाक़ की सम्भावना घटती है और रिश्तेदारों की हैसियत मतभेदों को समझने में अदालतों की अपेक्षा अच्छी है। पंच रिश्तेदार होने के नाते भी मेल करवाने में अधिक दिलचस्पी रखते होंगे। यदि कुरआन की इस आयत को आज्ञात्मक मान लिया जाए तो अचानक और निरंकुश तलाक़ों की समस्या अपने आप हल हो जायेगी।

इस्लाम में बहुपत्नीत्व

इस्लाम के ऊपर आज के युग में जो आरोप लगाए जाते हैं बहुपन्नित्व उनमें प्रमुख हैं। हम पहले भी कह चुके हैं कि बहुविवाह, इन्सानी इतिहास में, इस्लाम ने नहीं आरम्भ किया है। इस्लाम का इतिहास में यह योगदान है कि उसने असीमित बहुविवाह को सीमित किया है और सीमित बहुविवाह के लिए भी कड़ी शर्त लगायी है

कुर्आन के अनुसारः–

''तुम विवाह कर सकते हो दो, तीन या चार पत्नियों से, लेकिन यदि तुम्हें डर है कि तुम उनमें इन्साफ़ नहीं कर सकोगे, तो केवल एक।''[50]

बहुविवाह का सीमित और नियंत्रित करना इस्लाम के महत्वपूर्ण सुधारों में से एक सुधार है। पत्नियों की संख्या घटा कर चार कर दी गयी है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हर व्यक्ति पर चार विवाह करने की ज़िम्मेदारी डाली जा रही है ''इन्साफ़'' करने की ज़िम्मेदारी बहुत बड़ी है अब वे लोग जो इस स्तर के न होकर के केवल अपनी भावनाओं की तृप्ति के लिए कई विवाह करते हैं वे समाज के दोषी हैं और समाज उनको सज़ा देने के लिए आगे बढ़ सकता है।''[51]

बहुपत्नीय की आवश्यकता

सै0 अमीर अली कहते हैंः—

"यह तथ्य मस्तिष्क में रहना चाहिए कि बहुपत्नित्व परिस्थितियों पर आधारित है। किसी समय किन्हीं कारणों इस प्रथा की पूर्ण आवश्यकता होती है स्त्रियों को भूखे मरने से बचाने के लिए अथवा निराश्रितता और ग़रीबी से बचाने के लिए। यदि रिपोर्ट और गणनायें सही हैं तो पश्चिमी समुदाय के सभ्यता के केन्द्रों में मौजूद अनैतिकता का कारण पूर्ण निराश्रितता या अनाथता है।"(52)

बहुपत्नीय की अन्य सीमायें

न्याय के अतिरिक्त एक से अधिक विवाह करने के लिए अन्य शर्तों का पूरा होना भी ज़रूरी है। पत्नी के कुछ आर्थिक और लैंगिक अधिकार होते हैं जो कि पति के द्वारा पूरे किए जाने चाहिए। संक्षेप में उसकी आर्थिक हैसियत ऐसी हो कि वह अपनी सभी पत्नियों और उनके बच्चों को भरण पोषण (नफ़क़ा) दे सके तथा उसमें इतनी शक्ति भी हो कि वह सभी पत्नियों से उचित समय से समागम कर सके अन्यथा वह दाम्पत्य कर्तव्यों के न पूरा कर पाने का दोषी होगा। इमाम जाफ़र सादिक़ अ0 ने कहा है।

"यदि एक व्यक्ति अपने चारों ओर कई पत्नियों को इकट्ठा करता है और उनकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं करता जिसके कारण वे जारता की ओर क़दम बढ़ाती हैं तो वही व्यक्ति उनके गुनाहों के लिए जवाब देगा।(53) आधुनिक व्यक्ति बहुविवाह पसन्द नहीं करता है लेकिन वह स्त्री—मित्रों को जल्दी जल्दी बदलता रहता है और उसके ऊपर न तो महर की ज़िम्मेदारी है और न ही भरण—पोषण की। इसी लिए मुआइज़े शाम्बा, जो एक समय कागों का प्रधान मन्त्री था, से जब पूछा गया कि क्या उसके लिए एक पत्नी काफ़ी है तो उसने जवाब दिया, यदि मुझे हर साल सेक्रेट्री बदलने की अनुमति हो तो काफ़ी है।"(54)

उपसंहारः—

इस संक्षिप्त अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो गयी होगी कि इस्लाम सबके लिए आज़ादी का पैग़ाम लाया है और किसी का शोषण नहीं चाहता है साथ ही साथ इस्लाम न्याय पर आधारित प्रणाली है। जनाब खुर्मनी के शब्दों में

"यह विचारधारा जो कि अपने को उन्नतिशील कहलाने वाले लेखकों ने अनजाने में या जानबूझ कर पैदा की है, कि इस्लाम में स्त्री के साथ कठोरता बरती जाती है, ग़लत है। यह पूर्ण रूप से पक्षपाती राय है। इस्लाम में पुरूष और स्त्री दोनों को अपनी क़िस्मत का फैसला करने का अधिकार है अब यदि अन्तर मिलते हैं तो यह उनकी प्रकृति के कारण है।"(55)

इस्लाम में अधिकारों और कर्तव्यों का समन्वय है। और इस को जब भी नष्ट किया जाएगा समाज का नुक़सान होगा। अब इस हानि को समाज के लोग अपना लाभ समझें तो यह उनकी भूल है। आज की दुनिया जो अपने क़ानूनों पर चल रही है उसके लिए उर्दू के मशहूर कवि इक़बाल ने कहा है।

"क्या यही है मुआशेरत का कमाल,
मर्द बेकारो जन तही आगोश"(56)

1. मुतह्हरी दि राईट आफ वूमेन इन इस्लाम (तेहरान् 1981) पृ0 80
2. इजजती, दि रिवालूशनरी इस्लाम (तेहरान, 1980) पृ0 17
3. क़िदवाई, वूमन (देहली, 1964) पृ0 34
4. वह स्त्री जो गुलाम (SLAVE) हैं
5. क़िदवाई, वूमन, पृ0 3
6. अमीर अली, स्प्रिट आफ़ इस्लाम (लन्दन, 1964) पृ0 222
7. डालिन्जर, दी जेन्टाइल एण्ड दि जिव, 11233
8. दास एंव बारदिस, फ़ैमिली इन एशिया, पृ0 110
9. कपाडिया, मैरेज एण्ड फैमली इन इण्डिया, पृ0 169
10. इन्द्रि, दि स्टेटस आफ़ वूमेन इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृ0 30
11. दुबे, वूमेन इन दि निव एशिया पृ0 174
12. दास एण्ड बारदिस, दि फैमिली इन एशिया पृ0 111
13. क़िदवाई, वूमेन, पृ0 8
14. क़िदवाई, वूमेन, पृ0 9
15. क़ुर्आन 81 : 8—9
16. क़िदवाई, वूमन, पृ0 13
17. नम्बर्स 8, 9
18. क़िदवाई, वूमन, पृ0 26
19. क़िदवाई, वूमेन पृ0 26
20. हल्लाम, कान्स्टीट्यूशनल हिस्ट्री आफ़ इंग्लैण्ड, 1, 87
21. अमीर अली, स्प्रिट आफ इस्लाम, पृ0 226
22. अमीर अली, स्प्रिट आफ इस्लाम, पृ0 226
23. मुतह्हरी, राइट आफ वूमेन इन इस्लाम, पृ0 364

(बक़िया पेज नं0 14 पर ....)

सही नहीं होगा। अब कुछ न पूछिये, इस मन के जब्र को जो ऐसे वक़्त में जबकि मौज मस्ती और उमंगें अपनी जवानी पर है और दिल में मस्ती और उमंगों की घटा छाई हुई है और मुअज़्ज़िन की अज़ान का धड़का अपने फ़र्ज़ (Duty) की पहचान रखने वाला एक आदमी इस जोश और उमंगों के मिटाने पर अपने आप को मजबूर करता है और ले जाता है गुस्ल करने पर या फिर अगर गुस्ल न करने पर मजबूर है तो तयम्मुम करने का फ़र्ज़ पूरा करने की तरफ़। अगर सोने में ऐसी बात हो तो ऑख खुली और उठना ज़रूरी। ये नींद का बेचैन करना भी नींद की मतवाली तबियतों के लिये बड़ा ही जेहाद है।

4. धूल को हलक़ से नीचे उतरने देना।

5. जनबूझकर उल्टी (क़ै) करना कभी–कभी इसका रोकना भी तबियत की ख़राबी की वजह हो सकता है।

6. किसी बहने वाली चीज़ (Liquid/द्रव) के साथ–एनीमा लेना अगर डाक्टरी लेहाज़ से ज़रूरी नहीं हो गया है, और अगर सिर्फ़ इसके छोड़ने में कुछ जिस्मानी तकलीफ़ या दर्द वग़ैरह की तकलीफ़ ही सहना है तो इसको सहे और इस काम को न करें।

7. सर को अन्दर ले जाकर डुबोना। इसका मोल गर्मी के ज़माने में रोज़े की हालत में साफ़ ठण्डे हौज़ में उतरने वालों से पूछिए जिनका दिल पानी को देखकर लहरें लेने लगा हो और फ़ौरन दिल चाहता हो कि एक डुबकी लगा लें। मगर हुक्म की पाबन्दी सामने आकर खड़ी हो जाती है।

8. ख़ुदा और रसूल "स" और मासूम इमामों अलैहिस्सलाम पर झूठ बान्धना (तोहमत), यानी किसी बात या काम को इन में से किसी बुज़ुर्ग की तरफ़ ग़लत तौर पर (लान्छन) लगाना।

इसका असर ज़्यादा तर तकरीर करने वालों और ज़ाकेरीन पर पड़ता है। रोज़े की मजलिस एक तो यूं ही नहीं चलती, उधर ज़बान सूखी और होठों पर पपाड़ियॉ पड़ी हुई, ताक़त साथ नहीं देती। इधर सुनने वाले नींद के झोंके में मूर्ति बने ख़ामोशी से सुन रहे हैं और कोई असर नहीं लेते। ज़ेहन में एक टुकड़ा मौजूद है। अगर रिवायत में लगायें तो मजलिस में गर्मी पैदा हो जाने की उम्मीद है मगर मालूम है कि इसकी कोई असलियत नहीं। और अगर कहीं ये ग़लत रिवायत बयान की और "इमामों" की तरफ़ किसी बात लगा दी जो सही नहीं हुई तो मजलिस मालूम नहीं फिर भी चले या न चले लेकिन रोज़ा ज़रूर चला जायेगा। अब चाहे मिम्बर पर से सादगी से उतरना हो, लेकिन ब्यान उतना ही कीजिए जितना आपके नज़दीक सही है।

●●●

(पेज नं0 10 का बक़िया.................)

24. क़िदवाई, वूमेन, पृ0 46
25. क़ुर्आन : 49 : 1
26. क़ुर्आन : 49 : 13
27. क़ुर्आन : 3 : 195
28. क़ुर्आन : 4 : 32
29. क़ुर्आन : 5 : 38
30. क़ुर्आन : 24 : 2
31. क़ुर्आन : 33 : 35
32. जावेद बाहुनर, अत्तौहीद (तेहरान, 1984) 1–169
33. द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात, 1948 ई0 में घोषित हुआ।
34. तबातबाई, महजूबा, 11, नं0 5, पृ0 6
35. मुतह्हरी राइट आफ वूमेन इन इस्लाम, पृ0 35
36. बाहोनर, अलतौहीद (ईरान) 1–165
37. क़ुर्आन : 36 : 40
38. एस0 एम0 इक़बाल, सिक्स लेक्चर्स, पृ0 236
39. मुतह्हरी, राइट आफ वूमेन इन इस्लाम, पृ0 247
40. 2 : 187
41. मौदूदी, हुक़ूक़ुज़ज़ौजैन, पृ0 19
42. मुतह्हरी राइट आफ़वूमेन इन इस्लाम् पृ0 297
43. मुतह्हरी, राइट आफ वूमेन इन इस्लाम, पृ0 298
44. देखिए के0 ए0 सय्यद हुसैन, इजतिहाद–दि बीटिग हार्ट आफ शरीअः, लाइयर (मद्रास, 1981)
45. 2 : 229
46. 2 : 231
47. किताब अल ख़िलाफ फ़िल फ़िकह, 11–185
48. 4 : 35
49. 4 : 39
50. मुतह्हरी, राइट आफ़ वूमेन इन इस्लाम, पृ0 395
51. स्प्रिट आफ़ इस्लाम, पृ0 230
52. किताबुल काफ़ी वी0 566
53. मुतह्हरी राइट आफ़ वूमेन इन इस्लाम पृ0 399
54. महजूबा (तेहरान) 11, नं0 5, पृ0 4
55. क्या यह समाज की उन्नति है कि पुरूष के पास काम नहीं है वह बेकार है और स्त्री की गोद में बच्चा नहीं है अर्थात उसकी मातृत्व की भावना ख़त्म कर दी गयी है।

●●●